सामायिक पाठ

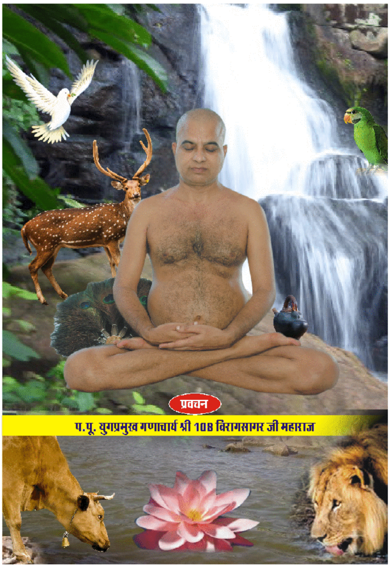

: अन्वयार्थ एवं भावार्थ :-

प.पू. राष्ट्रसंत, गणाचार्य, युगप्रमुख श्रमणाचार्य,

श्री108 डॉ. विरागसागरजी महाराज

-: प्रकाशक :-

श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ

जैन कीर्तिस्तम्भ, बस स्टैण्ड रोड, भिण्ड (म.प्र.)

प्रसंग : परम पूज्य युगप्रमुख श्रमणाचार्य, राष्ट्रसंत, गणाचार्य श्री 108 डॉ. विरागसागरजी महाराज के ''राष्ट्रीय रजत आचार्य पदारोहण महोत्सव'' वर्ष 2016-2017 के सुअवसर पर

कृति : सामायिक पाठ

अनयार्थ एवं भावार्थ : परम पूज्य युगप्रगुख श्रमणाचार्य, राष्ट्रसंत, गणाचार्य श्री 108 डॉ. विरागसागरजी महाराज

संस्करण : प्रथम 2015, पथरिया (म.प्र.)

प्रतियाँ : 1000

पुण्यार्जक : श्रीमान् पद्मचंदजी श्रीमती ऊषाजी मलैया
पथरिया, जिला-दमोह (म.प्र.)

मूल्य : 20.00

प्राप्ति स्थान :

1. श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ चैत्यालय मंदिर, बतासा बाजार, भिण्ड (म.प्र.) संपर्कसूत्र-पं. वीरेन्द्र जैन, मो. 9754803220

2. आचार्य श्री विरागसागर विद्यापीठ (बी.एड. कॉलेज)
पुष्प विहार कॉलौनी, बीना- 470113, जिला- सागर (म.प्र.)
मो 9425135816

3. विराग फाउण्डेशन
सी/ओ, श्री अरुण कोठडिया, 11-ए. विक्रम नगर सोसायटी, उस्मानपुरा, अहमदाबाद- 380013 (गुज.)
मो 9825900124

4. श्री भूपेन्द्र शांतिलाल शाह
13, वृंदावन सोसायटी, डेरी रोड, मेहसाना-2 (गुज.)
मो 9898494914, 9829452020

6. विराग महिला मंच, बोरीवली, मुंबई (महा.)

7. पुष्पा जी, जयपुर (राज.)

8. तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर

9. पंकज जैन, विराग युवा मंच, इन्दौर (म.प्र.)

मुद्रक : तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर मो. 9314962474/75

जीवन की महत्त्वपूर्ण झांकियाँ
परम पूज्य गणाचार्य 108 श्री विरागसागरजी महाराज

पूर्व नाम	:	अरविन्द जैन (टिन्नू)
जन्म	:	2 मई, 1963, गुरुवार (वैशाख शुक्ला 9, संवत् 2020, पथरिया)
माता-पिता	:	श्रीमती श्यामादेवी जैन (समाधिस्थ पू. श्रमणी आर्यिका विशांतश्री माताजी) ब्र.श्री कपूरचन्दजी जैन (संघस्थ पू.क्षुल्लक श्री 105 विश्ववंद्य सागर जी महाराज)
बहिन	:	श्रीमती मीना जैन, श्रीमती विमला जैन
भाई	:	श्री विजयकुमार, श्री सुरेन्द्रकुमार, बा.ब्र. श्री नरेन्द्र भैयाजी
लौकिक शिक्षा	:	इण्टर मध्यमा (पथरिया, श्री शांति निकेतन, दि.जैन संस्कृत विद्यालय, कटनी, म.प्र.)
क्षुल्लक दीक्षा	:	20 फरवरी, 1980 (फाल्गुन शु. 5 सं. 2036 बुद्धार, शहडोल म.प्र.)
नामकरण	:	पूज्य क्षु. श्री 105 पूर्णसागरजी महाराज
क्षु. दीक्षा गुरु	:	प.पू. तपस्वी सम्राट आचार्य श्री 108 सन्मतिसागर जी महा.
मुनि दीक्षा	:	9 दिसम्बर, 1983 (मगसर शु. 5 वि.सं. 2040), औरंगाबाद (महा.)
मुनि दीक्षा गुरु	:	प.पू.निमित्तज्ञानी आचार्य श्री 108 विमलसागरजी महाराज
आचार्य पद	:	8 नवम्बर, 1992 (का. शु. 13वि.सं. 2049) रविवार, द्रोणगिरी
संयमी सृजन	:	आचार्य-8, मुनि - 70, गणिनी आर्यिका-4, आर्यिका-64, ऐलक-5, क्षुल्लक -29, क्षुल्लिका- 23 कुल - 203
प्रशिष्य	:	100 से अधिक
समाधि सल्लेखनाएँ	:	लगभग 85 एवं अनेक तिर्यंच प्राणी
चातुर्मास	:	1980 से 2016 तक क्रमशः दुर्ग (छत्तीसगढ़), नागपुर (महाराष्ट्र), कारंजा लाड (महाराष्ट्र), कारंजालाड (महाराष्ट्र), नागपुर (महाराष्ट्र), भावनगर (गुजरात), पाँचवा (राज.), निमाज (राज.), जयपुर (राज.), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), टीकमगढ़ (म.प्र.), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), द्रोणगिरि (म.प्र.), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), बीना (म.प्र.), ललितपुर (म.प्र.), मढ़ियाजी (जबलपुर), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), शिखरजी (झारखण्ड), गया (बिहार), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), भिलाई (छत्तीसगढ़), कारंजालाड (महा.) मूडबिद्री (कर्नाटक), मेलचित्तामूर (तमिलनाडू), उद्गांव (महा.), मुम्बई (महा.), गाँधीनगर (गुजरात), लोहारिया (राज.),

अजमेर (राज.), जयपुर (राज.), इन्दौर (म.प्र.), श्रेयांसगिरी (म.प्र.), पथरिया (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.)।

साहित्य सृजन : 1. बारसाणुवेक्खा ग्रन्थ पर 1100 पृष्ठीय ''सर्वोदया'' संस्कृत टीका, 2. रयणसार ग्रन्थ पर 1500 पृष्ठीय ''रत्नत्रयवर्धिनी'' संस्कृत टीका, श्रमण संबोधनी टीका लेखन जारी है, 3. अनेक शोधात्मक, चिन्तनशील, बालकोपयोगी कथा, अनुवाद, गद्य, संपादित साहित्य, जीवनी एवं प्रवचन साहित्य 150 से अधिक ग्रंथ।

पंचकल्याणक : लघु वृहद् मिलाकर–67

उपाधियाँ : डॉक्ट्रेट आदि 44 से अधिक

सिद्धांत वाचनाएँ : धवल ग्रन्थ की 16 पुस्तकें तथा जयधवल ग्रंथ की 6 पुस्तकें, शेष जारी हैं।

गोष्ठियाँ : विद्वत, शिक्षक, प्राचार्य, न्यायाधीश–वकील, डॉक्टर्स, शासनिक।

अहिंसा, शाकाहार एवं व्यसन मुक्ति
अभियान : भिण्ड (म.प्र.), बीना (म.प्र.), भिलाई (छ.ग.), कारंजा (महा.), मेलचित्तामूर (तमिल.), उद्गाँव (महा.), गाँधीनगर (गुजरात), लोहारिया (राज.), अजमेर (राज.), जयपुर (राज.), इन्दौर (म.प्र.) श्रेयांसगिरि (म.प्र.), पथरिया (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), जिसमें 18 लाख से अधिक छात्र–छात्रायें व्यसनमुक्त, शाकाहारी एवं अहिंसा के उपासक बन चुके हैं।

शिविर : प्रतिवर्ष श्री विराग सम्यग्ज्ञान शिविर, प्रतिभा संस्कार शिविर, पूजन प्रशिक्षण शिविर, भक्तामर शिविर, श्रावक संस्कार शिविर आदि।

विशेष प्रवचन : कॉलेज, स्कूल, जेल, न्यायालय, गौशाला, वृद्धाश्रम, गुरुकुल, मुख्य चौराहे आदि पर हुए।

जेल प्रवचन : भिण्ड, टीकमगढ़, दुर्ग, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, जयपुर, अजमेर, इन्दौर, पन्ना, दमोह।

न्यायालय प्रवचन: अजमेर

पगविहार : 70,000 किलोमीटर से अधिक।

संघ सम्मेलन : भिण्ड, श्रेयांसगिरी, बीना, ललितपुर, श्रवणबेलगोला, औरंगाबाद, जयपुर।

वृहद् यति सम्मेलन:
एवं युगप्रतिक्रमण जयपुर (200 शिष्य–प्रशिष्य, अन्य साधु भी)
श्रमण–श्रमणी की प्राचीन परम्परा की पुनः स्थापना।

सामायिक पाठ (श्री अमितगति आचार्य)

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव।।1।।

अन्वयार्थ-

देव - हे भगवान्!
मम आत्मा - मेरी आत्मा
सदा - हमेशा
सत्त्वेषु - सम्पूर्ण प्राणियों में
मैत्रीम् - मैत्री भाव को
गुणिषु - गुणी जनों पर
प्रमोदं - प्रमोद भाव को,
क्लिष्टेषु जीवेषु - दुखी जीवों पर
कृपा-परत्वम् - दया भाव को,
विपरीत वृतौ - (और) विपरीत प्रवृति वाले (व्यक्तियों पर)
माध्यस्थभावं - मध्यस्थ भाव को
विदधातु - धारण करे।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! मेरा सब प्राणियों पर सदा मैत्री भाव रहे, गुणी जनों को देखकर प्रमोद (हार्दिक स्नेह) भाव उत्पन्न हो, दुखी जीवों पर करूणा भाव रहे और विपरीत आचरण वालों पर माध्यस्थ (उपेक्षा) भाव रहे, इस प्रकार ये चारों गुण दीजिए।

नित देव! मेरी आत्मा, धारण करे इस नेम को,
मैत्री करे सब प्राणियों से, गुणी जनों से प्रेम को।
उन पर दया करती रहे, जो दुःख ग्राह ग्रहीत हैं,
उनसे उदासी सी रहे जो धर्म से विपरीत हैं।।1।।

शरीरतः कर्त्तु मनन्तशक्तिम्,
विभिन्नमात्मान मपास्त दोषम्।
जिनेन्द्र! कोषादिव खड्गयष्टिम्,
तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः॥2॥

अन्वयार्थ-

जिनेन्द्र - हे जिनेन्द्र!
कोषात् - म्यान से
खड्गयष्टिं इव - तलवार के समान
अनन्त शक्तिम् - अनंत शक्ति वाले
अपास्त दोषम् - सम्पूर्ण दोषों से रहित
आत्मानम् - अपने आत्मा को
शरीरतः विभिन्नम् - शरीर से भिन्न
कर्त्तुम् - करने के लिए
तव - आपकी/आपके
प्रसादेन - कृपा से/प्रसाद से
मम - मेरी
शक्तिः - शक्ति
अस्तु - हो।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र प्रभो! आपके प्रसाद से मुझे ऐसी शक्ति प्राप्त हो जिसके द्वारा मैं अनंत शक्तिशाली एवं समस्त दोषों से रहित अपनी आत्मा को शरीर से इस तरह पृथक् कर सकूँ जैसे कि कोई म्यान से तलवार को निकालकर अलग कर देता है।

करके कृपा कुछ शक्ति ऐसी, दीजिए मुझ में प्रभो,
तलवार को ज्यों म्यान से, करते विलग हैं हे विभो।
गतदोष आत्मा शक्तिशाली, है मिली मम अंग से,
उसको विलग उस भाँति करने, के लिये ऋजु ढंग से॥2॥

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे,
योगे- वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेष ममत्वबुद्धेः,
समं मनोमेऽस्तु सदापि नाथ!।।3।।

अन्वयार्थ-

निराकृताशेष ममत्वबुद्धेः - सम्पूर्ण पर पदार्थों में ममत्व बुद्धि से रहित
नाथ ! - हे भगवन्!
मे मनः - मेरा मन
दुःखे-सुखे - दुःख में, सुख में
वैरिणि, बन्धुवर्गे - शत्रु में, मित्र वर्ग में
योगे-वियोगे - संयोग में, वियोग में
भवने-वने वा - भवन में और वन में
सदा-अपि - सदा ही/हमेशा
समम् - समान/समतावान
अस्तु - रहे

भावार्थ- हे सम्पूर्ण ममता से रहित हे जिनेन्द्र प्रभु! मेरा मन दुःख में सुख में, शत्रु एवं मित्रों पर अनिष्ट संयोग और इष्ट वियोग में, वन में या महल में राग द्वेष से रहित होकर सदा समता धारण करे।

हे नाथ! मेरे चित्त में, समता सदा भरपूर हो,
सम्पूर्ण ममता की कुमति, मेरे हृदय से दूर हो।
वन में, भवन में, दुःख में, सुख में नहीं कुछ भेद हो,
अरि मित्र में, मिलने-बिछुड़ने में, न हर्ष न खेद हो।।3।।

मुनीश! लीनाविव कीलिताविव,
स्थिरौ निषाताविव बिम्बिताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा,
तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव।।4।।

अन्वयार्थ-

मुनीश	-	हे मुनीश्वर!
तमो धुनानौ	-	अंधकार विनाशक
दीपकौ इव	-	दो दीपकों के समान
त्वपादौ	-	आपके दोनों चरण
मम हृदि	-	मेरे हृदय में
लीना इव	-	लीन होने के समान
कीलितौ इव	-	अथवा कीलित हुए के समान
स्थिरः	-	स्थिर/स्थाई/अविचल
निषातौ इव	-	उत्कीर्ण किये गये के समान
बिम्बितौ इव	-	मूर्ति के समान
सदा तिष्ठताम्	-	हमेशा, विराजमान हों

भावार्थ- हे मुनियों के ईश/प्रभु/स्वामी! अज्ञान या मोह रूपी अंधकार को नष्ट करने वाले आपके दोनों चरण कमल रूपी दीपक मेरे मन मंदिर में लीन हुए के समान (दीपक के समान) तथा पत्थर पर उत्कीर्ण (उकेरे) किये के समान अथवा प्रतिबिम्ब/मूर्ति की तरह सदा-सदा के लिए विराजमान रहें।

अतिशय घनी तम-राशि को, दीपक हटाते हैं यथा,
दोनों कमल-पद आपके, अज्ञान-तम हरते तथा।
प्रतिबिम्ब सम स्थिर रुप वे, मेरे हृदय में लीन हों,
मुनिनाथ! कीलित तुल्य वे, उर पर सदा आसीन हों।।4।।

एकेन्द्रियाद्या यदि देव! देहिनः,
प्रमादतः संचरता यतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिताः,
तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा।।5।।

अन्वयार्थ-

देव - हे भगवान!
यतस्ततः - इधर-उधर
संचरता - संचार करते हुए
मया - मेरे द्वारा
यदि - यदि
एकेन्द्रियाद्या - एकेन्द्रिय आदि
देहिनः - प्राणी
क्षता - विनष्ट हो गये हों
विभिन्ना - अलग-अलग हो गये हों
मिलिता - मिल गये हों
निपीडिताः - अथवा पीड़ित हुए हों
तदा - तो
तत् - वह
दुरनुष्ठितं - दुराचरण/पाप
मम - मेरा
मिथ्या - मिथ्या/विफल/निष्फल
अस्तु - हो

भावार्थ- हे देव! यदि प्रमाद से इधर-उधर चलते हुए मेरे द्वारा एकेन्द्रिय आदि जीवों को क्षत-विक्षत किया गया हो, या अपने समूह से अलग कर दिया हो, या दूसरे समूह में मिला दिया गया हो, तो मेरा यह दुष्कृत मिथ्या हो/निष्फल हो।

यदि एक-इन्द्रिय आदि देही, घूमते फिरते मही,
जिनदेव! मेरी भूल से, पीड़ित हुए होवें कहीं।
टुकड़े हुए हों, मिल गये हों, चोट खाये हों कभी,
तो नाथ! वे दुष्टाचरण, मेरे बनें झूठे सभी।।5।।

विमुक्तिमार्ग प्रतिकूल वर्तिना,
मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्र शुद्धेर्यदकारि लोपनं,
तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो!।।6।।

अन्वयार्थ-

प्रभो	-	हे स्वामिन्!
विमुक्ति मार्ग	-	मोक्ष मार्ग के
प्रतिकूल	-	प्रतिकूल
वर्तिना	-	आचरण करने वाले
दुर्धिया	-	कुबुद्धि/दुर्बुद्धि वाले
मया	-	मेरे द्वारा
कषायाक्ष वशेन	-	कषाय और इन्द्रियों के विषयों के वशीभूत होकर
चारित्रशुद्धेः	-	चारित्र की शुद्धि का
यत् लोपनम्	-	जो लोप
अकारि	-	किया हो (तो)
मम् दुष्कृतम्	-	मेरा दुष्कृत
मिथ्या अस्तु	-	मिथ्या हो/निष्फल हो

भावार्थ-विषय और कषायों के वश होकर हे स्वामिन्! मोक्षमार्ग के प्रतिकूल आचरण करके मैंने यदि चारित्र की शुद्धि का लोप किया हो तो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।

सन्मुक्ति के सन्मार्ग से, प्रतिकूल पथ मैंने लिया,
पंचेन्द्रियों चारों कषायों, में स्वमन मैंने किया।
इस हेतु शुद्ध चरित्र का जो, लोप मुझसे हो गया,
दुष्कर्म वह मिथ्यात्व को हो, प्राप्त प्रभु! करिए दया।।6।।

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं,
मनोवचः कायकषाय निर्मितम्।
निहन्मि पापं भव दुःख कारणं,
भिषग्विषं मन्त्र गुणैरिवाखिलम्।।7।।

अन्वयार्थ-

भिषक्	-	वैद्य
मन्त्रगुणैः	-	मंत्रों की शक्ति द्वारा
अखिलम् विषम् इव	-	जैसे सम्पूर्ण विष को नष्ट कर देते हैं उसी तरह
अहम्	-	मैं
विनिन्दनालोचनगर्हणैः	-	(आत्म) निन्दा, आलोचना और गर्हा के द्वारा
मनो वचः काय कषाय	-	मन, वचन, काय और कषाय से
निर्मितम्	-	उपार्जित
भव दुःख कारणम्	-	सांसारिक दुःखों के कारणभूत
पापम्	-	पापों को
निहन्मि	-	नष्ट करता हूँ।

भावार्थ- हे भगवन्! मैंने मन, वचन, काय और कषायों द्वारा संसार दुःख के कारणभूत जो पाप किये हैं उसे मैं आत्म निंदा, गर्हा और आलोचना द्वारा उसी प्रकार से नष्ट करता हूँ जिस प्रकार वैद्य मंत्रों के द्वारा समस्त विष को नष्ट कर देता है।

चारों कषायों से, वचन, मन, काय से जो पाप है,
मुझसे हुआ, हे नाथ! वह, कारण हुआ भव-ताप है।
अब मारता हूँ मैं उसे, आलोचना-निन्दादि से,
ज्यों सकल विष को वैद्यवर है, मारता मन्त्रादि से।।7।।

अतिक्रमं यद्विमते-र्व्यतिक्रमं,
जिनातिचारं सुचरित्र कर्मणः।
व्यधामनाचार-मपि प्रमादतः,
प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये।।8।।

अन्वयार्थ-

जिन	-	हे जिनेन्द्र!
अहं	-	मैंने
सुचरित्र कर्मणः	-	श्रेष्ठ चारित्र के अनुष्ठान (में)
विमते	-	दुर्बुद्धि से (और)
प्रमादतः	-	प्रमाद से
यः	-	जो
अतिक्रमम्	-	अतिक्रम
व्यतिक्रमम्	-	व्यतिक्रम
अतिचारम्	-	अतिचार (और)
अनाचारम् अपि	-	अनाचार भी
व्यधाम्	-	किया है
तस्य शुद्धये	-	उसकी शुद्धता के लिए
प्रतिक्रमम् करोमि	-	प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ-हे जिनेन्द्र देव! ग्रहण किये गये चारित्र के पालने में जो मैंने प्रमाद से अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार किया है उसे दूर कर चारित्र की शुद्धि के लिए मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

जिनदेव! शुद्ध चारित्र का, मुझसे अतिक्रम जो हुआ,
अज्ञान और प्रमाद से, व्रत का व्यतिक्रम जो हुआ।
अतिचार और अनाचरण, जो-जो हुए मुझसे प्रभो।
सबकी मलिनता मेटने को, प्रतिक्रम करता विभो।।8।।

क्षतिं मनः शुद्धि विधेरतिक्रमं,
व्यतिक्रमं शीलव्रते-र्विलंघनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं
वदन्त्यनाचार-मिहाति-सक्तताम्।।9।।

अन्वयार्थ-

प्रभो	-	हे भगवन्!
इह (ज्ञानिन)	-	इस लोक में आप जैसे ज्ञानीजन
मनः शुद्धि विधेः	-	मन की शुद्धि विधि की
क्षतिं	-	क्षति/विनाश को
अतिक्रमम्	-	अतिक्रम
शीलव्रतेः	-	शील की बाढ़ (मर्यादा) के
विलंघनम्	-	उल्लंघन को
व्यतिक्रमम्	-	व्यतिक्रम
विषयेषु	-	विषयों में
वर्तनम्	-	प्रवर्तन को
अतिचारम्	-	अतिचार (और)
अतिसक्तताम्	-	अत्यासक्ति को
अनाचारम्	-	अनाचार
वदन्ति	-	कहते हैं।

भावार्थ- हे प्रभो! आपने मनःशुद्धि के विनाश को अतिक्रम, व्रत की मर्यादा के उल्लंघन को व्यतिक्रम, इन्द्रिय विषय सेवन को अतिचार तथा आसक्ति पूर्वक विषय सेवन को अनाचार कहा है।

मन की विमलता नष्ट होने, को अतिक्रम है कहा,
और शीलचर्या के विलंघन, को व्यतिक्रम है कहा।
हे नाथ! विषयों में लपटने, को कहा अतिचार है,
आसक्त अतिशय विषय में, रहना महाऽनाचार है।।9।।

यदर्थ मात्रा पद वाक्य हीनं,
मया प्रमादाद्यदि किंचनोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी,
सरस्वती केवलबोध लब्धिम्।।10।।

अन्वयार्थ-

यदि - यदि
मया - मेरे द्वारा
प्रमादात् - प्रमाद से
यत् - जो
अर्थ, मात्रा, पद वाक्य - अर्थ, मात्रा, पद और वाक्य से
हीनम् - हीन/रहित
किंचित् - कुछ भी
उक्तम् - कहा गया हो तो
मे - मेरे
तत् - उस अपराध को
क्षमित्वा - क्षमा करके
सरस्वती देवी - सरस्वती देवी/जिनवाणी माता
केवल बोध लब्धिम् - केवल ज्ञान रूपी लब्धि को
विदधातु - प्रदान करे

भावार्थ- मैंने प्रमाद से यदि अर्थ, मात्रा, पद और वाक्य से हीन कुछ कहा हो तो, हे सरस्वती देवी! मेरे उस अपराध को क्षमा कर मुझे केवल ज्ञान रूपी लब्धि दे।

यदि अर्थ, मात्रा वाक्य में, पद में पड़ी त्रुटि हो कहीं,
तो भूल से ही वह हुई, मैंने उसे जाना नहीं।
जिनदेव वाणी! तो क्षमा, उसको तुरंत कर दीजिये,
मेरे हृदय में देवि! केवल ज्ञान को भर दीजिये।।10।।

बोधिः समाधिः परिणाम शुद्धिः,
स्वात्मोपलब्धिः शिव-सौख्य-सिद्धिः।
चिन्तामणिं चिन्तित-वस्तु-दाने,
त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि।।11।।

अन्वयार्थ-

देवि - हे सरस्वती देवि!
चिन्तित वस्तुदाने - मनोवांछित वस्तु के देने में
चिन्तामणिं - चिन्तामणी रत्न के समान
त्वाम् - आपको
वन्द्यमानस्य मम - वन्दन करने वाले मुझे
बोधिः - बोधि/केवलज्ञान
समाधिः - समाधि
परिणाम शुद्धिः - परिणामों की शुद्धि
स्वात्मोपलब्धिः - अपने आत्म स्वरूप की प्राप्ति
शिवसौख्य सिद्धिः - (और) मोक्ष सुख की सिद्धि
अस्तु - हो।

भावार्थ- हे सरस्वती देवि! आप मनोवांछित वस्तु को देने के लिए चिन्तामणि के समान हैं अतेव आपकी वन्दना करने वालों को बोधि, समाधि, परिणामों की शुद्धि अपने आत्म स्वरूप की उपलब्धि और मुक्ति के सुख की सिद्धि आपके प्रसाद से प्राप्त हो।

हे देवि! तेरी वन्दना मैं, कर रहा हूँ इसलिये,
चिन्तामणि-प्रभ हैं सभी, वरदान देने के लिये।
परिणाम-शुद्धि समाधि मुझमें, बोधि का संचार हो,
हो प्राप्ति स्वात्मा की तथा, शिवसौख्य की भवपार हो।।11।।

यः स्मर्यते सर्व मुनीन्द्र वृन्दैः,
यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः।
यो गीयते वेदपुराण शास्त्रैः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।।12।।

अन्वयार्थ-

यः - जो
सर्वमुनीन्द्र वृन्दैः - सभी मुनिराजों के समूह द्वारा
स्मर्यते - स्मरण किया जाता है
यः - जो
सर्वनरामरेन्द्रैः - सभी नरेन्द्रों और देवेन्द्रों से
स्तूयते - स्तुत्य (है तथा)
यः - जो
वेदपुराण शास्त्रैः - वेदों पुराणों और शास्त्रों के द्वारा
गीयते - गाया जाता है
सः - वह
देव देवः - देवाधिदेव (अरहन्त)
मम - मेरे
हृदये - हृदय में
आस्ताम् - विराजमान रहे।

भावार्थ- जिसे सर्व मुनिराज सदा स्मरण करते हैं, जिसका सर्व इन्द्र नरेन्द्र और धरणेन्द्र स्तवन करते हैं और जिसका वेद, पुराण और शास्त्र गुणगान करते हैं वह देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहे।

मुनिनायकों के वृन्द जिसको, स्मरण करते हैं सदा,
जिसका सभी नर अमरपति भी, स्तवन करते हैं सदा।
सच्छास्त्र वेद पुराण जिसको, सर्वदा हैं गा रहे,
वह देव का भी देव बस, मेरे हृदय में आ रहे।।12।।

यो दर्शनज्ञान सुखस्वभावः
समस्त संसार विकार बाह्यः।
समाधि गम्यः परमात्म संज्ञः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।।13।।

अन्वयार्थ-

यः	-	जो
दर्शन ज्ञान	-	अनंतदर्शन अनन्तज्ञान और
सुख-स्वभावः	-	अनन्त सुखरूप स्वभाव वाले हैं
(यः) समस्त संसार	-	जो संसार के समस्त
विकार बाह्यः	-	विकारों से रहित हैं,
(यः) समाधि गम्यः	-	जो समाधि से गम्य हैं
(यः) परमात्मसंज्ञः	-	और परमात्म संज्ञा के धारक हैं
स देवदेवः	-	वह देवों के देव
मम हृदये	-	मेरे हृदय में
आस्ताम्	-	विराजमान रहें।

भावार्थ- जो अनन्त दर्शन, ज्ञान और सुख रूप स्वभाव वाले हैं, जो संसार के समस्त विकारों से रहित हैं, जो समाधि के द्वारा ही अनुभवगम्य हैं और जिसे योगीजन परमात्मा कहते हैं, वह देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

जो अन्तरहित सुबोध-दर्शन, और सौख्यस्वरूप है,
जो सब विकारों से रहित, जिससे अलग भवकूप है।
मिलता बिना न समाधि जो, परमात्म जिसका नाम है,
देवेश वह उर आ बसे, मेरा खुला हृद्धाम है।।13।।

निषूदते यो भवदुःख जालं,
निरीक्षते यो जगदन्तरालं।
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।।14।।

अन्वयार्थ-

यः - जो
भवदुःख जालम् - संसार के दुःख समूह को
निषूदते - नष्ट करता है
यः - जो
जगदन्तरालम् - जगत के अन्तराल को
निरीक्षते - देखता है
यः अन्तर्गतः - जो लोक के अन्त में स्थित है।
योगि निरीक्षणीयः - और योगीजनों के द्वारा अवलोकनीय है।
स, देव देवो - वह देवों का देव
मम हृदयम् - मेरे हृदय में
आस्ताम् - विराजमान रहे।

भावार्थ- जो संसार दुःख जाल को काटते हैं, जो जगत के अन्तराल को अर्थात् सम्पूर्ण लोक को जानते और देखते हैं और योगीजनों द्वारा जाने जाते हैं वे देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

जो काट देता है जगत के, दुःख निर्मित जाल को,
जो देख लेता है जगत की, भीतरी भी चाल को।
योगी जिसे हैं देख सकते, अन्तरात्मा जो स्वयम्,
देवेश! वह मेरे हृदय-पुर का, निवासी हो स्वयम्।।14।।

विमुक्ति मार्ग प्रतिपादको यो,
यो जन्म मृत्यु व्यसनाद्यतीतः।
त्रिलोक लोकी विकलोऽकलंकः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।।15।।

अन्वयार्थ-

यः	-	जो
विमुक्ति मार्ग प्रतिपादकः	-	मोक्षमार्ग के प्रतिपादक हैं
जन्म मृत्यु व्यसनात्	-	जन्म-मरणादि दुःखों से
अतीतः	-	रहित हैं
यः त्रिलोक लोकी	-	जो तीनों लोकों का अवलोकन करते हैं
विकलः	-	शरीर रहित हैं
अकलंकः	-	कर्म कलंक से रहित हैं
स देवदेवः	-	वे देवों के देव
मम हृदये	-	मेरे हृदय में
आस्ताम्	-	विराजमान रहें

भावार्थ- जो मोक्षमार्ग के प्रतिपादक हैं, जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु इत्यादि दुःखों से रहित हैं, लोकालोक के ज्ञाता दृष्टा हैं, अशरीरी हैं, कर्म कलंक से रहित हैं, वे देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

कैवल्य के सन्मार्ग को, दिखला रहा है जो हमें,
जो जन्म के या मरण के, पड़ता न दुख सन्दोह में।
अशरीर हो त्रैलोक्यदर्शी, दूर है कुकलंक से,
देवेश वह आकर लगे, मेरे हृदय के अंक से।।15।।

क्रोडी - कृताशेष-शरीरवर्गाः
रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः
स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।।16।।

अन्वयार्थ-

क्रोडी कृताशेष शरीरवर्गाः - समस्त प्राणियों को व्याप्त करने वाले
रागादयो - रागादिक
दोषाः - दोष
यस्य - जिसके
न सन्ति - नहीं हैं
सः - वह
निरिन्द्रियः - अतीन्द्रिय
ज्ञानमयः - ज्ञानमयी
अनपायः - अपाय रहित
देव देवः - देवों के देव
मम हृदये - मेरे हृदय में
आस्ताम् - विराजमान रहें।

भावार्थ- समस्त प्राणीवर्ग को अपने आधीन करने वाले रागादि दोष जिनमें किंचित् भी नहीं हैं जो अतीन्द्रिय हैं, ज्ञानमयी हैं और सर्व अपायों से रहित हैं। वे देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

अपना लिया है निखिल, तनुधारी-निबहने ही जिसे,
रागादि दोष-व्यूह भी, छू तक नहीं सकता जिसे।
जो ज्ञानमय है, नित्य है, सर्वेन्द्रियों से हीन है,
जिनदेव देवेश्वर वही, मेरे हृदय में लीन है।।16।।

यो व्यापको विश्व-जनीन वृत्तेः,
सिद्धो विबुद्धो धुत-कर्मबन्धः।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।।17।।

अन्वयार्थ-

यः - जो
व्यापकः - ज्ञेय की अपेक्षा सर्व व्यापक हैं
विश्व जनीन वृत्तेः - विश्व कल्याण की जिनकी सहज प्रवृत्ति है
सिद्धः - सिद्ध हैं
विबुद्धः - ज्ञायक स्वभावी हैं
धुत कर्मबन्धः - कर्म बन्धनों के विध्वंसक हैं
ध्यातः - ध्यान में चिन्तन करने वाले के
सकलम् - समस्त
विकारम् - विकारी भावों को
धुनीते - नष्ट करते हैं
स देवदेवः - वह देवों के देव
मम हृदये - मेरे हृदय में
आस्ताम् - विराजमान रहें

भावार्थ- विश्व कल्याण की प्रवृत्ति जिनकी साहजिक हो चुकी है, जो ज्ञेयापेक्षा सर्वव्यापी हैं सिद्ध हैं, ज्ञायक स्वभावी हैं और सर्वकर्म बन्धनों से रहित हैं तथा जिनका ध्यान करने से हृदय के सर्व विकार दूर होते हैं, वह देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

संसार की सब वस्तुओं में, ज्ञान जिसका व्याप्त है,
जो कर्म-बन्धन हीन बुद्ध, विशुद्ध सिद्धी प्राप्त है।
जो ध्यान करने से मिटा, देता सकल कुविकार को,
देवेश वह शोभित करे, मेरे हृदय आगार को।।17।।

न स्पृश्यते कर्म कलंक दोषैः,
यो ध्वान्त संघैरिव तिग्मरश्मिः।
निरञ्जनं नित्यमनेक मेकं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।।18।।

अन्वयार्थ-

ध्वान्त संघैः	-	अन्धकार समूह से
तिग्मरश्मिः इव	-	जैसे सूर्य स्पष्ट नहीं होता है
यः	-	(उसी प्रकार) जो
कर्म कलंक दोषैः	-	कर्म कलंक और रागादि दोषों से
न स्पृश्यते	-	स्पष्ट नहीं होता (तथा जो)
निरजंनम्	-	निरंजन, निर्मल
नित्यम्	-	नित्य
अनेकम्	-	अनेक और
एकम्	-	एक स्वरूप है
तं	-	उस
आप्तम्	-	आप्त
देवम्	-	देव की
अहम्	-	मैं
शरणम्	-	शरण को
प्रपद्ये	-	ग्रहण करता हूँ

भावार्थ- जैसे सम्पूर्ण अंधकार का समूह भी सूर्य को स्पर्शित नहीं कर सकता अर्थात् सूर्य अंधकार समूह से अस्पृष्ट है उसी प्रकार ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म कलंक से रहित और रागादि दोष जिसे स्पर्श भी नहीं कर सकते हैं, जो नित्य निरंजन स्वरूप है और जो एक रूप होकर भी अनेक रूप हैं मैं उन्हीं आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूँ।

तम संघ जैसे सूर्य किरणों, को न छू सकता कहीं,
उस भाँति कर्म-कलंक, दोषाकर जिसे छूता नहीं।
जो है निरंजन वस्त्वपेक्षा, नित्य भी है, एक है,
उस आप्त प्रभु की शरण में हूँ, प्राप्त जो कि अनेक है।।18।।

विभासते यत्र मरीचिमाली,
न विद्यमाने भुवनावभासी।
स्वात्म स्थितं बोधमयप्रकाशं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।।19।।

अन्वयार्थ-

भुवनावभासी - भुवन का प्रकाशक
मरीचिमाली - सूर्य
यत्र - यहाँ
विद्यमाने - (आपके) विद्यमान रहने पर
न विभासते - शोभा नहीं पाता है
स्वात्म स्थितम् - ऐसे अपने आत्म स्वरूप में स्थित
बोधमय प्रकाशम् - ज्ञानमय प्रकाश वाले
तं आप्तम् देवम् - उस आप्त देव की
शरणम् प्रपद्ये - शरण को ग्रहण करता हूँ

भावार्थ- जिनेन्द्र देव के विद्यमान रहने पर भुवन प्रकाशक सूर्य शोभा नहीं पाता है, जो अपनी आत्मा में स्थित हैं और ज्ञानमयी प्रकाश वाले हैं, मैं उन्हीं आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूँ।

यह दिवसनायक लोक का, जिसमें कभी रहता नहीं,
त्रैलोक्य-भाषक-ज्ञान-रवि, पर है वहाँ रहता सही।
जो देव स्वात्मा में सदा, स्थिर-रुपता को प्राप्त है,
मैं हूँ उसी की शरण में, जो देववर है आप्त है।।19।।

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं,
विलोक्यते स्पष्ट मिदं विविक्तम्।
शुद्धं शिवं शान्त मनाद्यनन्तं,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।।20।।

अन्वयार्थ-

यत्र - जिसके
विलोक्यमाने - अवलोकन
सति - करने पर
इदम् - यह
विश्वम् - विश्व स्पष्ट रूप से
विविक्तम् - पृथक्-पृथक्
विलोक्यते - दिखाई देता है
शुद्धम् - उस शुद्ध
शिवम् - शिव
शान्तम् - शान्त स्वरूप और
अनाद्यन्तम् - आदि अन्त से रहित
तं आप्तम् देवम् - ऐसे उन आप्त प्रभु की
(अहं) शरणम् प्रपद्ये - (मैं) शरण को ग्रहण करता हूँ

भावार्थ- जिनके केवल दर्शन में यह सारा विश्व स्पष्ट और पृथक्-पृथक् दिखाई देता है, जो शुद्ध, शान्त, आदि अन्त रहित और शिव स्वरूप हैं, मैं उन्हीं आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूँ।

अवलोकने पर ज्ञान में, जिसके सकल संसार ही,
है स्पष्ट दिखता एक से है, दूसरा मिल कर नहीं।
जो शुद्ध शिव है, शांत भी है, नित्यता को प्राप्त है,
उसकी शरण को प्राप्त हूँ, जो देववर है आप्त है।।20।।

येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा
विषाद-निद्रा भय-शोक-चिन्ताः।
क्षतोऽनलेनेव तरुप्रपंच,
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।।21।।

अन्वयार्थ-

अनलेन - अग्नि के द्वारा
तरु प्रपंचः - वृक्षों का समूह
क्षता इव - जैसे क्षय (भस्म) कर दिया जाता है
येन - उसी प्रकार जिसके द्वारा
मन्मथ मान मूर्च्छा - काम, मान, मूर्छा
विषाद निद्रा भय शोक चिन्ता -दुख, निद्रा, भय, शोक, चिंता (आदि समस्त दोष)
क्षता - क्षय को प्राप्त हो चुके हैं।
(अहं) तं आप्तम् देवम् - (मैं) उस आप्त देव की
शरणम् प्रपद्ये - शरण को प्राप्त होता हूँ

भावार्थ- जिस प्रकार अग्नि के द्वारा वृक्षों का समूह क्षय को प्राप्त होता है। उसी प्रकार जिसके द्वारा काम, विकार, मान, मूर्छा, विषाद, निद्रा, भय, शोक और सर्व प्रकार की चिन्ताएँ नष्ट कर दी गयी हैं। मैं उसी आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूँ।

वृक्षावली जैसे अनल की, लपट से रहती नहीं,
त्यों शोक, मन्मथ मान को, रहने दिया जिसने नहीं।
भय, मोह, नींद, विषाद, चिन्ता, भी न जिसको व्याप्त है,
उसकी शरण में हूँ गिरा, जो देववर है आप्त है।।21।।

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी,
विधानतो नो फलको विनिर्मितः
यतो निरस्ताक्षकषाय विद्विषः,
सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः।।22।।

अन्वयार्थ-

विधानतः	-	विधान रूप से समाधि का साधन
न संस्तरोश्मा	-	न संस्तर (आसन) है
न तृणम्	-	न तृण पुंज है
न मेदिनी	-	न पृथ्वी है और
विनिर्मितः फलकः	-	न बनाया गया काष्ठ का फलक (चौकी पाटा) ही है।
यतः	-	क्योंकि
सुधीभिः	-	बुद्धिमानों के द्वारा
निरस्ताक्ष कषाय	-	विषय कषायरूपी
विद्विषः	-	शत्रुओं से रहित
सुनिर्मलः	-	निर्मल
आत्मा एव	-	आत्मा ही
मतः	-	(ध्यान का आसन) माना गया है

भावार्थ- ध्यान का आसन न संस्तर है, न पाषाण है न तृण है न भूमि है और न काष्ठ फलक (चौकी/पाटा, तख्त) है किन्तु जिसके अन्दर से विषय-कषाय रूप शत्रु दूर हो गये हैं। ऐसी निर्मल आत्मा को ज्ञानीजनों ने ध्यान का आसन माना है।

विधिवत शुभासन घास का, या भूमि का बनता नहीं,
चौकी, शिला को ही शुभासन, मानती बुधता नहीं।
जिससे कषायें-इन्द्रियाँ, खटपट मचाती हैं नहीं,
आसन सुधी जन के लिये है, आत्मा निर्मल वही।।22।।

न संस्तरो भद्र! समाधि-साधनं,
न लोकपूजा न च संघ मेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं,
विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम्।।23।।

अन्वयार्थ-

भद्र - हे भद्र!
यतः - क्योंकि
न संस्तरः - न संस्तर (आसन)
न लोक पूजा - न लोक पूजा और
न संघ मेलनम् - न संघ सम्मेलन
समाधि साधनम् - समाधि के साधन हैं
ततः - इसलिए
सर्वामपि - सभी
बाह्यवासनाम् - बाहरी वासनाओं को
विमुच्य - छोड़ करके
अनिशम् - निरन्तर/दिन रात
अध्यात्मरतः - अध्यात्म में निरत
भव - हो।

भावार्थ- हे भद्र परिणामी आत्मन्! समाधि का साधन निश्चय से न संस्तर है, न लोक पूजा है और न संघ समूह है, इसलिए सभी बाह्य वासनाओं को छोड़कर अपने अध्यात्म में निरन्तर संलग्न रहो।

हे भद्र! आसन, लोक पूजा, संघ की संगति तथा,
ये सब समाधि के न साधन, वास्तविक में है प्रथा।
सम्पूर्ण बाहर-वासना को, इसलिये तू छोड़ दे,
अध्यात्म में तू हर घड़ी, होकर निरत रति जोड़ दे।।23।।

न सन्ति बाह्या मम केचनार्थाः,
भवामि तेषां न कदाचनाहम्।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं,
स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र! मुक्त्यै।।24।।

अवयार्थ-

केचन बाह्या	-	कोई भी बाहरी
अर्थाः	-	पदार्थ
मम न सन्ति	-	मेरे नहीं हैं
(च) न अहं तेषां	-	(और) न मैं उनका
कदाचन् भवामि	-	कदापि हूँ
इत्थम् विनिश्चित्य	-	इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके
बाह्यं विमुच्य	-	बाह्य सम्पर्क को छोड़कर
भद्र	-	हे भद्र !
त्वम् सदा	-	तुम सदा
मुक्त्यै	-	मुक्ति के लिए
स्वस्थः भव	-	अपनी आत्मा में स्थिर रहो।

भावार्थ- कोई भी बाह्य पदार्थ मेरा नहीं है और न मैं कभी उनका हुआ हूँ ऐसा दृढ़ निश्चय कर हे भद्र पुरुष! बाह्य वस्तुओं को छोड़कर तुम मुक्ति प्राप्ति के लिये सदा अपनी आत्मा में स्थिर रहो।

जो बाहरी हैं वस्तुएँ, वे हैं नहीं मेरी कहीं,
उस भाँति हो सकता कहीं, उनका कभी मैं भी नहीं।
यों समझ बाह्याडम्बरों को, छोड़ निश्चित रूप से,
हे भद्र! हो जा स्वस्थ तू, बच जायगा भवकूप से।।24।।

आत्मान-मात्मन्यवलोकमानः,
त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र-
स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम्।।25।।

अन्वयार्थ-

आत्मानम् - अपनी आत्मा को
आत्मनि - अपने आप में
अवलोक्यमानः - अवलोकन (साक्षात्) करते हुए
त्वम् - तुम
खलु - निश्चय से
दर्शन-ज्ञान-मयः - दर्शन ज्ञान से युक्त
विशुद्धः - विशुद्ध हो
साधु - साधु/मुनिजन
यत्र तत्रापि स्थितः - जहाँ कहीं भी स्थित हो
एकाग्रचित्तः - एकाग्रचित्त होकर
समाधिम् - समाधि को
लभते - प्राप्त करते हैं।

भावार्थ- हे आत्मन् ! तू अपनी आत्मा में अपने आप का अवलोकन कर, क्योंकि अनंत दर्शन ज्ञानमयी और विशुद्ध स्वभाव वाली आत्मा को एकाग्र चित्त होकर साधु जन जहाँ कहीं भी स्थित होकर समाधि को प्राप्त कर लेते हैं।

निज को निजात्मा-मध्य में ही, सम्यगअवलोकन करे,
तू दर्शन-प्रज्ञानमय है, शुद्ध से भी है परे।
एकाग्र जिसका चित्त है, तू सत्य इसको मानना,
चाहे कहीं भी हो समाधि-प्राप्त उसको जानना।।25।।

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा,
विनिर्मलः साधिगम स्वभावः।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता,
न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः।।26।।

अन्वयार्थ-

मम आत्मा	-	मेरी आत्मा
सदा एकः	-	हमेशा एकाकी
शाश्वतिकः	-	शाश्वत
विनिर्मलः	-	निर्मल
साधिगम स्वभावः	-	अधिगम (ज्ञान) स्वभाव से युक्त है।
अपरे समस्ता	-	अन्य सभी
बहिर्भवाः	-	बाहरी पदार्थ
कर्म भवाः	-	कर्म जनित हैं
स्वकीयाः	-	वे अपने और
शाश्वताः न सन्ति	-	शाश्वत नहीं हैं

भावार्थ-मेरी आत्मा सदा एक और नित्य स्वरूप है, कर्म मलों से रहित और ज्ञान स्वभावी है और इसके अलावा जितने भी बाहरी पदार्थ तथा राग द्वेषादि हैं वे सब कर्मजनित एवं अशाश्वत हैं।

मेरी अकेली आत्मा, परिवर्तनों से हीन है,
अतिशय विनिर्मल है सदा, सद्ज्ञान में ही लीन है।
जो अन्य सब हैं वस्तुएँ, वे ऊपरी ही हैं सभी,
निज कर्म से उत्पन्न हैं, अविनाशिता क्यों हो कभी।।26।।

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं,
तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः,
कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये।।27।।

अन्वयार्थ-

यस्य	-	जिसका
वपुषा अपि	-	शरीर (के) भी
सार्द्धम	-	साथ
न ऐक्यम्	-	ऐक्य नहीं है
तस्य	-	उसका
पुत्र कलत्र मित्रैः	-	पुत्र, स्त्री और मित्रों के साथ
किम् (ऐक्यम्) अस्ति	-	क्या एकता संभव है? अर्थात् नहीं
चर्मणि	-	(क्योंकि) चमड़े के
पृथक् कृते	-	अलग कर देने पर
शरीरमध्ये	-	शरीर के मध्य में
रोमकूपाः	-	रोम छिद्र
हि कुतः तिष्ठन्ति	-	निश्चय से कहाँ रह सकते हैं

भावार्थ- जिसकी शरीर के साथ भी ऐक्यता नहीं है फिर उसका पुत्र, स्त्री और मित्रों के साथ ऐक्य कैसे संभव है। चर्म के पृथक् कर देने पर फिर उससे संबंधित रोम के साथ ऐक्य कैसे संभव है। चर्म के पृथक् कर देने पर फिर उससे संबंधित रोम कूप पृथक् ही हो जाते हैं वे मांसादि से लगे नहीं रहते क्योंकि वे चर्म में ही होते हैं।

है एकता जब देह के भी, साथ में जिसकी नहीं,
पुत्रादिकों के साथ उसका, ऐक्य फिर क्यों हो कहीं।
जब अंग-भर से मनुज के, चमड़ा अलग हो जायगा,
तो रोंगटों का छिद्रगण, कैसे नहीं खो जायगा।।27।।

संयोगतो दुःखमनेक भेदं,
यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो,
यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम्।।28।।

अन्वयार्थ-

यतः - क्योंकि
शरीरी - संसारी प्राणी
जन्म वने - संसार रूपी वन में
संयोगतः - संयोग के कारण
अनेक भेदं - अनेक प्रकार के
दुःखम् - दुःख को
अश्नुते - पाता है
ततः - इसलिए
आत्मनीनाम् - अपनी कल्याणकारणी
निर्वृतिम् - मुक्ति के
यियासुना - इच्छुक जन को
असौ - वह संयोग
त्रिधा परिवर्जनीय - तीनों प्रकार से अर्थात् मन वचन काय से छोड़ देना चाहिये।

भावार्थ- बाह्य पदार्थों के संयोग से अर्थात् उनमें ममत्व भाव स्थापित करने से ही प्राणी भव वन में अनेक प्रकार के दुःखों को प्राप्त होता है। इसलिए मुक्ति के इच्छुक भव्यों को वह संयोग मन, वचन, काय से अवश्य ही छोड़ देना चाहिए।

संसाररूपी गहन में है, जीव बहु दुख भोगता,
वह बाहरी सब वस्तुओं, के साथ कर संयोगता।
यदि मुक्ति की है चाह तो फिर, जीवगण! सुन लीजिये,
मन से-वचन से-काय से, उसको अलग कर दीजिये।।28।।

सर्वं निराकृत्य विकल्प-जालं,
संसारकान्तार निपात-हेतुम्।
विविक्त मात्मानमवेक्षमाणो-
निलीयसे त्वं परमात्मतत्वे।।29।।

अन्वयार्थ-

संसार कान्तार निपात	-	संसार रूप वन में पतन के
हेतुम्	-	कारण
सर्वम् विकल्प जालं	-	सम्पूर्ण विकल्प जाल को
निरा कृत्य	-	दूर करके
विविक्तम्	-	एकमात्र
आत्मानम्	-	आत्मा को
अवेक्षमाणः	-	देखते हुए
त्वम्	-	तुम
परमात्म तत्वे	-	परमात्म तत्व में
निलीयसे	-	लीन रहो।

भावार्थ- भव वन में भ्रमण करने वाले सर्व विकल्प जाल को दूर करके एकमात्र सबसे भिन्न अपनी आत्मा को देखते हुए हे आत्मन् तुम परमात्म! तत्व में लीन रहो।

देही! विकल्पित जाल को, तू दूर कर दे शीघ्र ही,
संसार वन में डालने का, मुख्य कारण है यही।
तू सर्वदा सबसे अलग, निज आत्मा को देखना,
परमात्मा के तत्व में तू, लीन निज को लेखना।।29।।

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा,
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेणदत्तं यदि लभ्यते स्फुटं,
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।।30।।

अन्वयार्थ-

आत्मना पुरा	-	अपने द्वारा पहिले
यत्कर्म	-	जो कर्म
स्वयं कृतम्	-	स्वयं किये गये हैं
तदीयं	-	उनका
शुभाशुभम् फलं	-	अच्छा-बुरा फल
स्फुटं लभते	-	स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है
यदि परेणदत्तम्	-	यदि दूसरों के द्वारा दिया गया
(सुखम्) लभते	-	सुख जीव को प्राप्त होने लगे
तदा	-	तब तो (फिर)
स्वयं कृतम् कर्म	-	स्वयं के द्वारा किये गये कर्म
निरर्थकम्	-	निरर्थक/व्यर्थ हो जावेंगे

भावार्थ- हे भगवान्। जिस जीव ने पूर्व काल में अच्छे या बुरे कर्म स्वयं उपार्जित किये हैं वह उसी प्रकार के अच्छे या बुरे फल को प्राप्त होता है। यदि कोई दूसरों के द्वारा दिये गये शुभ या अशुभ फल को प्राप्त होने लगे तो फिर अपने किये कर्म निरर्थक हो जावेंगे, किन्तु ऐसा कभी होता नहीं है।

पहले समय में आत्मा ने, कर्म हैं जैसे किए,
वैसे शुभाशुभ फल यहाँ पर, इस समय उसने लिए।
यदि दूसरे के कर्म का फल, जीव को हो जाय तो,
हे जीवगण! फिर सफलता, निजकर्म की खो जाय तो।।30।।

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो,
न कोपि कस्यापि ददाति किंचन।
विचारयन्नेवमनन्य मानसः,
परो ददातीति विमुंच शेमुषीम्।।31।।

अन्वयार्थ-

निजार्जितम्	-	अपने उपार्जित
कर्म विहाय	-	कर्म को छोड़कर
कोऽपि कस्यापि देहिनः	-	कोई भी किसी भी जीव को
किंचन न ददाति	-	कुछ भी नहीं देता है
एवम् विचारयन्	-	ऐसा विचारते हुए
आत्मन्	-	हे आत्मन्!
परः ददाती	-	दूसरा कोई देता है
इति	-	इस प्रकार
शेमुषीम् विमुच्य	-	बुद्धि को छोड़कर
अनन्य मानसः	-	एकाग्रचित्त हो

भावार्थ- अपने उपार्जित कर्मों के अलावा कोई भी प्राणी किसी को सुख या दुःख नहीं देता है ऐसा विचार कर, हे आत्मन् ! तू एकाग्र चित्त हो और 'दूसरा देता है' इस बुद्धि को छोड़, इस प्रकार विचार करने से किसी के प्रति राग द्वेष नहीं होता है।

अपने उपार्जित कर्म-फल को, जीव पाते हैं सभी,
उसके सिवा कोई किसी को, कुछ नहीं देता कभी।
ऐसा समझना चाहिये, एकाग्र मन होकर सदा,
'दाता अपर है भोग का', इस बुद्धि को खोकर सदा।।31।।

यैः परमात्माऽ मितगतिवन्द्यः,
सर्व-विविक्तो भृशमनवद्यः।
शश्वदधीतो मनसि लभन्ते-
मुक्तिनिकेतं विभववरं ते।।32।।

अन्वयार्थ-

यैः - जिन पुरुषों द्वारा
अमितगतिवन्द्यः - अपरिमित ज्ञान वाले अथवा अमितगति आचार्य द्वारा वंदनीय
सर्व विविक्तः - सर्व कर्मों से रहित
भृशम अनवद्यः - अत्यंत निर्दोष
परमात्मा - ऐसा परमात्मा
मनसि शश्वत् - मन में निरन्तर
अधीयते - चिन्तन किया जाता है
ते विभव वरम् - वे (पुरुष) परम वैभव वाले
मुक्ति निकेतम् - मुक्ति रूपी महल को
लभन्ते - प्राप्त कर लेते हैं।

भावार्थ- जो परमात्मा अपरिमित ज्ञानी हैं अथवा अमितगति आचार्य के द्वारा वंदनीय हैं, सर्व पदार्थ से भिन्न हैं और पूर्ण निर्दोष हैं उनका जो निरन्तर मन से चिन्तन करते हैं वे भाग्यशाली सर्वश्रेष्ठ वैभव वाले मोक्ष महल को प्राप्त करते हैं।

सबसे अलग परमात्मा है, अमितगति से वन्द्य है,
हे जीवगण! वह सर्वदा, सब भाँति ही अनवद्य है
मन से उसी परमात्मा को, ध्यान में जो लाएगा,
वह श्रेष्ठ लक्ष्मी के निकेतन, मुक्ति पद को पाएगा।।32।।

इति द्वात्रिंशतावृत्तैः परमात्मानमीक्षते।
योऽनन्यगत चेतस्को यात्यसौ पदमव्ययम्।।

अन्वयार्थ-

यो - जो
अनन्यगत चेतस्कः - एकाग्र चित्त होकर
इति द्वात्रिंशता - इन बत्तीस (32)
वृत्तैः - पद्यों से
परमात्मानम् - परमात्मा को
ईक्षते - देखता है
असौ - वह
अव्ययम् - अविनाशी
पदम् - पद को
याति - प्राप्त होता है।

भावार्थ- इस प्रकार इन बत्तीस छंदों से जो एकाग्रचित्त होकर परमात्मा का चिंतन करता है वह अविनाशी मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है।

पढ़कर इन द्वात्रिंश पद्य को,
लखता जो परमात्मवन्द्य को।
वह अनन्यमन हो जाता है,
मोक्ष-निकेतन को पाता है।।

* * *

उपसर्ग विजेता परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागरजी महाराज द्वारा लिखित, सम्पादित एवं संकलित तथा श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित प्रवचन सत् साहित्य

सं.	नाम	मूल्य
1.	संस्कृत सर्वोदया टीका (वारसाणुवेक्खा) भाग 1-2	150
2.	संस्कृत रत्नत्रयवर्धिनी टीका (रयणसार) भाग 1-2	185
3.	संस्कृत श्रमणप्रबोधनी टीका (पाहुडद्वय)	
	(शोधपूर्ण साहित्य)	
4.	शुद्धोपयोग	40
5.	सम्यग्दर्शन	35
6.	आगम चक्खू साहू	25
7.	सल्लेखना से समाधि	30
8.	संत साधना के प्रेरक प्रसंग	20
9.	परम दिगम्बर जैन मुनि (हिन्दी, मराठी, कन्नड़, तमिल, अंग्रेजी)	45
10.	सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म	30
11.	तीर्थंकर दिव्य दर्शन	30
12.	तीर्थंकर दर्शन	
13.	व्यसन विचार	25
14.	फूल नहीं, हैं काँटे	
15.	संस्कार सुरभि (हिन्दी, गुजराती, मराठी)	18
16.	जिनेन्द्र दर्शन, जिनेन्द्र पूजन	10
17.	आध्यात्मिक शंका-समाधान	30
18.	आध्यात्मिक तत्त्व-चर्चा	40
	(चिंतन साहित्य)	
19.	चैतन्य चिन्तन भाग-1	15
20.	चैतन्य चिन्तन भाग-2	15
21.	चैतन्य चिन्तन भाग-3	15
	(बालोपयोगी साहित्य)	
22.	बाल विज्ञान भाग-1 (हिन्दी, इंग्लिश, मराठी, कन्नड़)	10
23.	बाल विज्ञान भाग-2 (हिन्दी, इंग्लिश)	10
24.	बाल विज्ञान भाग-3	10
25.	बाल विज्ञान भाग-4	10
26.	कर्म विज्ञान भाग-1 (हिन्दी, इंग्लिश)	10

27.	कर्म विज्ञान भाग-2	10
28.	कर्म विज्ञान भाग-3	10
	(कथा साहित्य)	
29.	नैतिक कथा मंजूषा भाग-1	30
30.	नैतिक कथा मंजूषा भाग-2	30
	(अनुवाद साहित्य)	
31.	वारसाणुवेक्खा	
32.	परमरत्नार्चना संग्रह	20
33.	सामायिक पाठ (हिन्दी, गुजराती)	10
	(पद्य साहित्य)	
34.	भावों के विशुद्ध क्षण	15
35.	मुक्ताञजलि भाग-1	15
36.	मुक्ताञ्जलि भाग-2	15
37.	नव देवता निर्वाण क्षेत्र पूजा	
	(संकलित/सम्पादित साहित्य)	
38.	साधना से समाधि	20
39.	विमल नित्य पाठावलि	25
40.	आराधना	35
41.	सुभाषित संग्रह	40
42.	आप्त अर्चना	
43.	मानतुंग की अमर भक्ति (सचित्र भक्तामर)	65
44.	साधना	10
45.	अनुप्रेक्षा	10
46.	जिनागम दीप	251
47.	सम्मेद शिखर विधान	
48.	चारित्र शुद्धि व्रत	25
49.	करुणामूर्ति सन्त	100
50.	तपस्वी सम्राट	10
51.	यज्ञोपवीत विधि	
52.	साधना के सोपान	
53.	पदम् पुराण प्रश्नोत्तरी	100
54.	स्तोत्र भारती	51
	(एकांकी/नाटक साहित्य)	

55.	सत्यमित्र–सत्यदृष्टि	
56.	प्रद्युम्न हरण	

(पूज्य आचार्य श्री पर आधारित साहित्य)

57.	विरागाभिवंदन अभिनंदन	
58.	निस्पृही संत भाग–1–2	60
59.	विराग सेतु (महाकाव्य) (हिन्दी, गुजराती, प्राकृत) भाग–1	100
60.	विराग सेतु (महाकाव्य) भाग–2	
61.	संत काव्य की परम्परा में आचार्य विरागसागर	65
62.	कमल से महाकमल	
63.	घटनायें ये जीवन की	80
64.	दिगम्बरत्व के चितेरे	150
65.	विराग सिंधु की उर्मियाँ	15
66.	विराग वाटिका	41
67.	भक्ति की झंकार	25
68.	विराग काव्यांजलि	
69.	धर्म पीयूष	30
70.	ऐसे चलो मिलेगी राह	40
71.	दूर नहीं है मंजिल	30
72.	उड़ रे पंछी	10
73.	तीर्थंकर वर्धमान	15
74.	पहले देव–पूजा फिर काम दूजा	25
75.	तीर्थंकर ऐसे बनो	60
76.	तट की ओर	10
77.	सिर्फ दो प्रवचन	10
78.	इष्टोपदेश (प्रवचन)	
79.	मानतुंग की अमरभक्ति	150
80.	कल्याणक महोत्सव	20
81.	दान तीर्थ	20
82.	धर्म के दश सोपान	20
83.	जीवों पर दया करो, शुद्ध शाकाहार करो	20
84.	बुराईयाँ ही जेल, अच्छाईयाँ ही मुक्ति	10
85.	प्रवचन वर्षा	25
86.	कर्तव्यमेव कर्तव्यं	25

87.	श्रद्धा प्रसून	25
88.	मोक्ष की राह	25
89.	विरागामृत-1	30
90.	विरागामृत-2	
100.	समाधि तंत्र (प्रवचन)	
101.	समयोचित शिक्षायें भाग-1	20
102.	समयोचित शिक्षायें भाग-2	20
103.	समयोचित शिक्षायें भाग-3	20
104.	विराग मंथन (हिन्दी, अंग्रेजी)	5
105.	रजत पुष्प	51
106.	कहानी सबसे सुहानी	30
107.	अक्षय निधि (हिन्दी, अंग्रेजी)	10
108.	संस्कार की लहरें	20
109.	चलो चलें प्रभु दर्शन को	30
110.	आध्यात्मिक धर्म प्रवचन	30
111.	घर-घर की कहानी	30
112.	वारसाणुवेक्खा प्रवचन	125
113.	पर्यूषण निधि	15
114.	पद्मनंदि पंचविंशति: अधिकार 1. धर्मोपदेशामृतम्	200
115.	पद्मनंदि पंचविंशति: अधिकार 2. दानोपदेशम्	40
116.	पद्मनंदि पंचविंशति: अधिकार 3. अनित्य पञ्चाशत्	50
117.	पद्मनंदि पंचविंशति: अधिकार 4-5. एकत्व सप्तति तथा यतिभावनाष्टकम्	85
118.	पद्मनंदि पंचविंशति: अधिकार 6. उपासक संस्कार	60
119.	पद्मनंदि पंचविंशति: अधिकार 7. देशव्रतोद्योतनम्	60
120.	पद्मनंदि पंचविंशति: अधिकार 8-9 सिद्धस्तुति एवं आलोचना	85
121.	मेरी भावना	
122.	आचार्य विराग सागर साहित्य दर्शन	10
123.	मेरी भावना प्रवचन	
124.	फॉर यूथ प्रोग्रेस	22
125.	रत्नकरण्डक श्रावकाचार प्रवचन भाग-1	100
126.	सामायिक पाठ प्रवचन	85

127. विराग संध्या 20
128. विराग अर्चना 40
129. स्वर्ग पुष्प 30
130. षट्लेश्या प्रवचन
131. ऐसे बनायें घर को स्वर्ग
132. क्यूँ इतना अभिमान है.... 30
133. सिद्धों का खजाना 30
134. अपने नैतिक कर्त्तव्य 30
135. श्रुतज्ञानवर्धक विधान 20

Video D.V.D

1. आचार्य पदारोहण द्रोणगिरि
2. राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा जयन्ती, उद्गाँव
3. उपसर्ग पर उत्कर्ष की यात्रा
4. आर्यिका विशान्तश्री माताजी, समाधि
5. व्यसन मुक्ति शाकाहार अभियान
6. लोक और मध्यलोक
7. ज्योतिर्लोक और चन्द्रयात्रा
8. जेल प्रवचन
9. स्कूल प्रवचन
10. शाकाहार रैली
11. अहिंसा रैली
12. न्यायालय में प्रवचन
13. 25 दीक्षायें- श्रवणबेलगोला
14. 11 दीक्षायें-गाँधीनगर
15. 8 दीक्षायें-गिरनारजी
16. 11 दीक्षायें-किशनगढ़
17. 26 दीक्षायें-उदयपुर
18. 25 दीक्षायें-जयपुर
19. 8 दीक्षायें-इन्दौर
20. स्वर्णिम जन्म जयन्ती
21. सिद्धांत एवं आध्यात्मिक प्रवचन (वारसाणुवेक्खा, सामायिक पाठ, तत्त्वार्थ सूत्र, पद्मनंदि पंचविंशतिका भाग-1-14)
22. मातृभक्ति
23. देश के नाम कलंक बूचड़खाने

Audio DVD

1. श्यामा के लाल
2. साधना के सरताज
3. गुरुवर का जयकारा
4. प्रवचन वर्षा (दशधर्म, सोलहकारण)
5. श्री विराग सागर नमोऽस्तु ते
6. करें गुरु भक्ति
7. चलें गुरुवर के द्वार
8. गीत गुरु के गायेंगे

9. जियो हजारों साल गुरुवर
10. मेरे मन वीणा के तारे
11. विराग स्वर्णोत्सव
12. रजतवर्ष मुनिदीक्षा का
13. आचार्य श्री विरागसागरजी महाराज पूजा
14. हे सन्मति-सन्मति दो
15. स्वर्णिम जयन्ती याद रहेगी
16. प्रथम सूरि बुंदेलखण्ड के
17. गुरु नाम की धूम मची है

साहित्य प्राप्ति स्थान

1. **श्री सम्यग्ज्ञान विराग विद्यापीठ**
चैत्यालय मंदिर, बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)
सम्पर्क सूत्र : पं. वीरेन्द्र जैन (मो. 9754803220)
2. **आचार्य श्री विराग सागर विद्यापीठ (बी.एड.कॉलेज)**
पुष्प विहार कॉलोनी, बीना-470113, जिला-सागर (म.प्र.)
3. **विराग फाउण्डेशन,** द्वारा-श्री अरुण कोटड़िया, II-A विक्रम नगर सोसायटी, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-380013 (गुजरात)
4. **श्री भूपेन्द्र शांतिलाल शाह,** 12-B, वर्धमान सोसायटी, डेरी रोड, मेहसाना-2 (गुजरात) सम्पर्क सूत्र- श्री भूपेन्द्र शाह (मो. 9898494914, 9829452020)
5. **विराग महिला मंच,** बोरीवली, मुम्बई (महा.)
6. **श्रीमती पुष्पा पाटनी,** 574, शांतिनगर, जैन मंदिर के सामने,
गोपालपुर वायपास, जयपुर (राज.) मो. 09460765050
7. **श्री मनीष पाटनी,** नया बाजार, 54, धर्मकांटा के पास, अजमेर (राज.)
मो. 09414002306
8. **श्री तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, विष्णु व्यास**
मोहता हॉस्पिटल के पास, मोहता चौक, बीकानेर (राज.) मो. 9314962475
9. **राष्ट्रीय विराग युवा मंच, अध्यक्ष – श्री राजेश जैन**
अंजनी नगर, इन्दौर मो. 09425316970
10. **राष्ट्रीय युवा मंच अध्यक्ष – श्री पंकज पाटनी**
72, विंध्याचल नगर, एरोड्रम रोड, इन्दौर मो. 09425476665
11. **डॉ. महेन्द्र कुमार जैन ‘मनुज’**
22/2, रामगंज, जिन्सी, इन्दौर-7 मो. 09826091247